शेषनाग एवं शेषशायी नारायण

डॉ. रामदेव साहू
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप शोध संस्थान, जयपुर

हमारे ब्रह्माण्ड का मूल आधार शेषनाग है, जिसे भ्रमवश पृथ्वी का भी आधार कह दिया गया है। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है, कि पृथ्वी के सुदूर नीचे जिस पाताल लोक का अस्तित्व बतलाया गया है, वहाँ तक पृथ्वी की ही विद्यमानता है तथा पृथ्वी से सुदूर ऊपर जिस सत्यलोक का अस्तित्व बताया गया है, वहाँ तक आकाश की ही विद्यमानता है। अवशिष्ट पदार्थ को शेष कहते हैं। प्रलय होने पर जब सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् नष्ट हो जाता है, तो उसके जो सूक्ष्म परमाणु शेष बचते हैं, उनका संघात या समूह शेष कहा गया है। जैसा कि श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में उल्लेख हुआ हैं-

''नष्टे लोके द्विपरार्द्धावसाने,
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः।।''

चूँकि सृष्टि की कालावधि के बराबर ही प्रलय की कालावधि होती है, अतः बहुत लम्बे समय तक इस परमाणु संघात को संरक्षण प्रदान करने वाले तीन मुख्य तत्त्व होते हैंः-

1) अग्नि की संवर्तक नाम वाली रश्मियाँ
2) वायु की संकर्षण नाम वाली रश्मियाँ
3) सविता की अनन्त नाम वाली रश्मियाँ

तीनों प्रकार की रश्मियों का समूह परमाण्वीय विश्व का मूलाधार होता है। इन रश्मि के अधिष्ठातृ देवता जिनका अग्नि, वायु एवं सविता के नाम से उल्लेख किया गया है, ये अपनी रश्मियों के माध्यम से सदैव विद्यमान रहते हैं। ये शाश्वत हैं, अतएव भगवान् वेद का भी उद्घोष हैः-

''अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्''

इन तीनों सनातन ब्रह्मस्वरूपों से विनश्यद् अवस्था में भी अविनश्यद् रहने वाला शेष सनातन बना रहता है, अतः यह भी कहा गया है कि शेष स्वयं भगवान् ही है - **''शेषस्तु भगवान् स्वयम्।''**

उक्त तीनों प्रकार की रश्मियों से तीन तीन प्रकार की विशिष्ट रश्मियाँ आविर्भूत होकर प्रसृत होती हैं। अग्नि की संवर्तक नाम वाली रश्मियों से क्रमशः वसु, संख एवं करञ्जि नामक विशिष्ट रश्मियाँ आविर्भूत होती है। वायु की संकर्षण नाम वाली रश्मियों से 'राजिमती,' 'बिन्दुलेखा' एवं 'तक्षा' नामक विशिष्ट रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। सविता की अनन्त नाम वाली रश्मियों से 'पद्मा' 'पद्मका' एवं 'कुलिशा' नामक विशिष्ट रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। अग्नि की संवर्तक रश्मियों से उत्पन्न होने वाली 'वसु' संखा एवं 'करञ्जि' नामक रश्मियाँ पीत वर्णवाली होती हैं। वायु की संकर्षण रश्मियों से उत्पन्न होने वाली 'राजिमती' 'बिन्दुलेखा' एवं 'तक्षा' नामक रश्मियाँ नील वर्णवाली होती हैं। सविता की अनन्त नामक रश्मियों से उत्पन्न होने वाली 'पद्मा' 'पद्मका' एवं 'कुलिशा' नामक रश्मियाँ लाल वर्ण वाली होती हैं।

वसुनामक रश्मियों का संघात वासुकि कहलाता है। संखा नामक रश्मियों के संघात का नाम 'शंखपाल' है। 'करञ्जि' नामक रश्मियों का संघात 'कर्कोटक' कहलाता है। राजिमती नाम रश्मियों का संघात 'राजिल' कहलाता है। 'बिन्दुलेखा' नामक रश्मियों का संघात 'चित्राङ्ग' कहलाता है। 'तक्षा' नामक रश्मियों का संघात 'तक्षक' कहा जाता है। 'पद्मा' नामक रश्मियों का संघात 'महापद्म' तथा 'पद्मक' नामक रश्मियों का संघात ही 'पद्म' कहा जाता है। 'कुलिशा' नामक रश्मियों का संघात 'कुलिक' कहा जाता है। ये नौ प्रकार की विशिष्ट रश्मियों के संघात 'नाग' संज्ञा द्वारा अभिहित किये गये हैं।

'नाग' का अर्थ सर्प नहीं है, किन्तु भ्रमवश सर्प अर्थ कर दिया गया है। वस्तुतः इन रश्मिसंघातों की स्थिति सुमेरु के नीचे के भाग से प्रारम्भ हो कर ब्रह्माण्ड के नीचे के भाग से होते हुए कुमेरु तक होती है। सुमेरु एवं कुमेरु ये दोनों कुल पर्वत हैं तथा पर्वत को 'नग' कहा जाता है। एक नग (पर्वत) से दूसरे नग (पर्वत) तक अवस्थित होने से इन्हें 'नाग' कहा गया है। इन दोनो पर्वतों के तलीय क्षेत्रों का मध्य भाग ही इनका विचरणक्षेत्र है, जहाँ ये रश्मियाँ मण्डलाकार भ्रमण करती हैं। अतः जैसे नग (पर्वत) में विचरण करने वाले हाथी को 'नाग' कहते हैं, वैसे ही इन्हें भी 'नाग' कहा गया है। बृहन्नारायणीय तन्त्र के टीकाकार ने यह भी बतलाया है, कि ये रश्मियाँ ब्रह्माण्ड के भीतर प्रवेश नहीं करतीं इस कारण भी इन्हें नाग कहा गया है।

ये नौ नाग ही अधिवेश माने गये हैं, क्योंकि इनसे भी अन्य विभिन्न प्रकार की रश्मियाँ उत्पन्न होती हैं, जो इन्हीं को अच्छादित किये रहती हैं। वासुकि एवं शंखपाल से सात-सात सौ प्रकार की रश्मियाँ अविर्भूत होती हैं। कर्कोटक से तीन सौ प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। राजिल से रश्मियाँ आविर्भूत नहीं होतीं, किन्तु रश्मियों का सांकर्य इससे सम्भव होता है। चित्राङ्ग से हजार प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। तक्षक से पाँच सौ प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। महापद्म से भी पाँच सौ प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। पद्म से तीन सौ प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं तथा

इसी प्रकार कुलिक से भी हजार प्रकार की रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं। इन रश्मियों को 'फणों' की संज्ञा दे दी गयीं, जिससे भी सर्प होने की भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। शारदातिलक में इनका वर्णन निम्नानुसार प्राप्त होता है:-

''अनन्तकुलिकौ विप्रौ वह्निवर्णावुदाहृतौ।
प्रत्येकं तु सहस्त्रेण फणानां समलंकृतौ।।
वासुकिः शंखपालश्च क्षत्रियौ पीतवर्णकौ।
प्रत्येकं तु फणासप्तशत संख्याविराजितौ।।
तक्षकश्च महापद्मो वैश्यावेतावही स्मृतौ।
नीलवर्णौ फणापञ्चशतौ तुङ्गोत्तमाङ्गकौ।।
पद्मकर्कोटकौ शूद्रौ फणात्रिशतकौ सितौ।''

उपर्युक्त उल्लेख में यद्यपि कतिपय भिन्नतायें भी कही गयी हैं, किन्तु उनका निराकरण ज्योतिषशास्त्र से भली भाँति हो जाता है, अतः उक्त विषय में अधिक शंका समाधान की आवश्यकता नहीं है। ये नौ नाग काल के ही अंश हैं यह भी ज्योतिषशास्त्र बतलाता है। वहाँ 'कुलिक' को विशेष महत्त्व दिया गया है तथा इन्हें ही 'राहुकाल' भी कहा गया है, जो इनके दैनिक प्रभाव को लक्षित करता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि शेष ही काल है, जो शाश्वत है। सूर्य की भाँति यह स्वयं रश्मिपुंज है, किन्तु इसमें प्रकाश की अपेक्षा 'तमस्' का बाहुल्य है, अतः इसे भगवान् विष्णु का तमोमय विग्रह भी कहा गया है।

पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः।
शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः।।
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलाशिखोज्ज्वलः।
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम्।।

शेष में तमोबाहुल्य का एक और भी कारण है और वह है सविता से ब्रह्माण्ड को प्राप्त होने वाली 'काश्य' नाम रश्मियाँ, जो ब्रह्माण्ड के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव से नीचे की ओर पर्याप्त मात्रा में प्रसृत रहती हैं तथा पृथ्वी के सतही भागों की सुदृढता को बनाये रखती हैं। पृथ्वी निरन्तर इन 'काश्य' रश्मियों का पान करने के कारण 'काश्यपी' कही जाती है। अमरकोशकार ने पृथ्वी के पर्यायों में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है-

'क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः'

काश्यपी कहने से कश्यप की पुत्री होने का भी भ्रम हो जाता है, किन्तु पृथ्वी कश्यप की पुत्री नहीं है। 'काश्य' रश्मियाँ तमस् की सत्ता को बनाये रखने में पर्याप्त सहायक होती हैं। सूर्य से प्राप्त 'श्यावा' नामक अन्य रश्मियों का

सहयोग भी इन्हें प्राप्त होता है, अतः ब्रह्माण्ड के बाहरी भाग में तमस् का प्राबल्य हो जाता है तथा शेष नामक रश्मिसमूह उसमें ही अनुप्रविष्ट हो कर अपनी सत्ता को बनाये रखता है। ब्रह्माण्ड के उत्तरी ध्रुव पर शेष का जो अन्तिम सिरा है, उसे पुच्छ कहा गया है तथा दक्षिणी ध्रुव वाला जो सिरा है, वह इस शेष का मुख कहा गया है। शेष के इस पुच्छ भाग से ही तारामण्डल का प्रारम्भ होता है। इसके ऊपर 'शिशुमार' (ताराओं का एक विशेष समूह जिसकी आकृति गिरगिट जैसी है।) अवस्थित है जो सभी तारासमूहो में शिरोमणि कहा गया है। इस शिशुमार का पुच्छ भाग भी ब्रह्माण्ड के उत्तरी ध्रुव से सटा हुआ है। यह शिशुमार सूर्य के केन्द्र में विद्यमान 'विष्णु' की रश्मियों को अत्यधिक मात्रा में ग्रहण करता है तथा उसी से प्रकाशित होता है। इसे भगवान् विष्णु का तारकामय विग्रह कहा गया है, जैसा कि विष्णुपुराण में उल्लेख है-

''तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभो।
दिवि रूपं हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः।।
आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम।
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणात्मकः।।
हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः।
बिभर्त्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः।।''

विष्णु के तारकामय विग्रह के रूप में उपलक्ष्यमाण शिशुमार ब्रह्माण्ड के मध्य भाग में ध्रुव के ऊपरी भाग से लेकर सूर्य की दिशा में दक्षिणी ध्रुव की ओर विस्तृत है। इसे ही शेषशायी विष्णु कहा गया है। चूँकि शिशुमार के नीचे नीचे ही 'पर्जन्य' की विद्यमानता होती है। इस पर्जन्य में ही 'नार' (वृष्टिजल) की उत्पत्ति सम्भव होती है, क्योंकि पर्जन्य में ही जलीय परमाणु सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं, जो 'नार' संज्ञा से अभिहित किये गये हैं। ये नार ही उस शिशुमार (तारकामय विष्णु) के आश्रय हैं, अतः उस शिशुमार की ही 'नारायण' यह अन्य संज्ञा भी विष्णु के पर्याय रूप में ग्रहण की गयी है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणःस्मृतः ।।

शिशुमार का केन्द्र भाग ही उन तारकामय विष्णु की 'नाभि' है तथा यहाँ से ही 'स्कम्भ' (ग्रहावस्थीय रेखा) का आरम्भ होता है। 'स्कम्भ' ही कमलनाल के रूप में वर्णित किया गया है। इस 'स्कम्भ' का अन्तिम छोर 'सविता' (तपोलोक में अवस्थित द्वितीय सूर्य) तक गया हुआ है। वे 'सविता' ही प्रजापति के अन्यतर रूप हैं, जिन्हें ब्रह्मा के नाम से पुकारा जाता है। 'सविता' के ऊर्ध्वभाग से जो रश्मियाँ आविर्भूत होती हैं, वे स्वरूपतः वायवीय होने से अदृश्य होती हैं किन्तु अतुलनीय प्रभावयुक्त होती हैं, इनका संघात 'रुद्र' कहा गया है। यह रुद्र ही शिव है। इस प्रकार ब्रह्मा एवं शिव भी इन नारायण के ही आश्रय हैं तथा नारायण का आश्रय शेष है।